संक्रमण

हिन्दी ADDA

कामतानाथ

संक्रमण

एक : बयान पिता

कहो तो स्टांप पेपर पर लिखकर दे दूँ, यह घर बरबाद होकर रहेगा, कोई रोक नहीं सकता। जिंदा हूँ इसीलिए देख-देखकर कुढ़ता रहता हूँ। इससे अच्छा था, मर जाता। या फिर भगवान आँखों की रोशनी छीन लेते। वही ठीक रहता। न अपनी आँख से देखता, न अफसोस होता।

मुझको क्या? मेरी तो जैसे-तैसे कट गई। क्या नहीं किया मैंने इस घर के लिए! बाप मरे थे तो पूरा डेढ़ हजार का कर्ज छोड़कर मरे थे। और यह आज से चालीस-पैंतालीस साल पहले की बात है। उस जमाने का डेढ़ हजार आज का डेढ़ लाख समझो, लेकिन एक-एक पाई चुकाई मैंने। माँ के जेवर सब महाजन के यहाँ गिरवी थे। उन्हें छुड़ाया। जवान बहन थी शादी करने को। उसकी शादी की। मानता हूँ, लड़का बहुत अच्छा नहीं था। बिजली कंपनी में मीटर रीडर था। लेकिन आज? बेटे-बेटियाँ अच्छे स्कूलों में पढ़ रहे हैं। फूलकर कुप्पा हो रही है। पूरी सेठानी लगती है। मकान तो अपना है ही, बिजली फ्री सो अलग। जितनी चाहो, जलाओ। तीन-तीन कूलर चलते हैं गर्मियों में। जाड़ों में हर कमरे में हीटर। तनख्वाह से ज्यादा ऊपर की आमदनी होती है। दो-दो गाड़ियाँ हैं। एक स्कूटर और एक मोटर साइकिल। शादी हुई थी तो साइकिल भी नहीं थी घर में। इसी को कहते हैं, भगवान जिसको देता है, छप्पर फाड़कर देता है।

बाबू के मरने के बाद माँ दस साल तक और जीं। कभी साल दो साल में दस-पाँच दिनों के लिए बड़े भाई के यहाँ गई हों तो गई हों, प्रायः मेरे पास ही रहीं। क्या मजाल कि कभी खाने-पहनने की कोई तकलीफ हुई हो। जब तक जीं, साल में एक जोड़ा धोती और घर के खाने के अलावा एक पाव दूध ऊपर से बँधा था। जब-जब बीमार पड़ीं, हमेशा डॉक्टरी इलाज कराया। वह भी एलोपैथी। यह नहीं कि चार आने की होम्योपैथी की या वैद्य जी की पुड़िया मँगाकर खिला दी हो। मरने से पहले तो पूरे एक महीने अस्पताल में भरती रहीं। बीवी के जेवर तक गिरवी हो गए थे। डेढ़ हजार लिए डॉक्टर ने ऑपरेशन के। बोतलों खून और ग्लूकोज चढ़ा, सो अलग, मगर कैंसर का इलाज तो आज तक नहीं निकला, उस जमाने में भला क्या होता। चाहता तो यहीं रफा-दफा कर देता, लेकिन नहीं। कानपुर ले गया, गंगाजी। पूरी मोटर गाड़ी किराये पर की। पचास कि पचपन आदमी साथ गए थे। दाह संस्कार के बाद सबको चाय-पानी कराया। लौटकर दसवाँ, तेरहवीं की। ब्राह्मणों को भोज दिया। दान-दक्षिणा दी। एक साल बाद बरसी की, जिसमें सौ आदमियों से कम ने क्या खाया होगा।

कहने को तो बड़े भाई भी थे। रस्म अदायगी के लिए आए भी। लेकिन क्या मजाल कि एक धेला खर्च किया हो, जबकि तनख्वाह मुझसे दूनी नहीं तो ड्योढ़ी तो होगी ही। घर का खयाल उन्होंने बाबू के जिंदा रहते नहीं किया तो माँ के मरने पर क्या करते!

शादी के छह महीने के भीतर ही घर छोड़कर चले गए थे। बाबू तब तक रिटायर हो चुके थे। कुँवारी बहन थी, जवान। लेकिन बाबू की भी तारीफ करनी होगी। उन्होंने एक जबान नहीं कहा कि घर छोड़कर क्यों जा रहे हो। बल्कि भाभी के दहेज का सारा सामान, जेवर-गहना, कपड़ा-लत्ता, बरतन-भाँडा, एक-एक चीज गिनाकर सहेजवा दी। माँ जरूर कुछ रोईं-धोईं, लेकिन बाबू ने उन्हें डपट दिया, 'जिस आदमी को अपनी तरफ से माँ-बाप का खयाल नहीं। उस पर किसी के रोने-धोने का क्या असर पड़ेगा। मैं भी जिंदा हूँ, एक लड़का भी अभी और है। सो तुम न राँड़ हुई हो, न निपूती, काहे की चिंता है तुमको? माँ चुप हो गईं। बड़े भाई ने झुककर माँ और बाबू के पैर छुए और सामान से लदे ट्रक पर बैठकर चले गए। क्या मजाल कि बाबू ने कभी उनका नाम भी लिया हो पलटकर।

मैं तो उस वक्त बी.ए. में पढ़ रहा था। बाबू की पेंशन से घर चलता था, लेकिन धीरे-धीरे दिक्कत पड़ने लगी तो वह एक दुकान पर मुनीमगीरी करने लगे। मैंने भी ट्यूशनें शुरू कर दीं। तब कहीं घर का खर्च चल पाया। मैं एम.ए. में था कि बाबू अचानक चल बसे। शाम को दिल का दौरा पड़ा। रात होते-होते प्राण त्याग दिए। पेंशन भी आधी रह गई, लेकिन मैंने हिम्मत नहीं हारी। और ट्यूशनें करने लगा। सुबह निकलता तो रात दस बजे लौटता। छह-छह सात-सात ट्यूशनें एक वक्त में पढ़ाता था।

जवानी इसी तरह कट गई। जवानी क्या, बचपन में भी कभी कोई सुख नहीं भोगा। बाबू रेलवे में मामूली नौकर थे। तनख्वाह ही इतनी नहीं थी कि अलल्ले-तलल्ले होता। स्कूल जाते समय माँ बासी रोटी में घी-नमक लगाकर दे देतीं। वही खाकर चला जाता। जेबखर्च किस चिड़िया का नाम है, कभी जाना ही नहीं। बस, कभी चौथे-छठे पैसा कि अधन्ना मिल गया, उसी को गनीमत समझा। नहीं तो वही खाली हाथ हिलाते, कंधे पर बस्ता लादे चले जा रहे हैं। शुरू में पाठशाला में पढ़ा। नंगे पाँव, बगल में तख्ती और हाथ में बुदक्का। उसके बाद स्कूल जाने लगा। दो मील से क्या कम रहा होगा, मगर किसी सवारी की बात मन में भी नहीं आई। हाँ, इंटर में पहुँचा, तब जरूर डरते-डरते माँ से कहा कि पिता से कहें कि साइकिल दिला दें। कॉलेज जाने में थक जाता हूँ। कॉलेज था भी खासा दूर। शुरू में पिता ने टाल दिया, लेकिन जब खुद देखा

कि कॉलेज से आकर निढाल होकर बिस्तर पर पड़ा रहता हूँ तो माँ के बार-बार टोकने पर, साइकिल खरीद कर दी। वह भी सेकेंड हैंड, नीलामी वाली। तभी से, कभी इकन्नी कभी दुअन्नी मिलने लगी। लेकिन जेबखर्च के नाम पर नहीं, बल्कि इसलिए कि रास्ते में कहीं साइकिल पंचर न हो जाए।

अब क्या-क्या बताऊँ! कपड़ों का यह हाल था कि हाई स्कूल तक घर के धुले, बिना इस्तरी किए कपड़े पहन कर जाता था। ऊनी पैंट पहली बार बी.ए. में पहुँचने पर पहनी। कोट तब भी नहीं। कोट पहली बार तब बना, जब एम.ए. में था और कान्वोकेशन में बी.ए. की डिग्री लेने जाना था। तभी डेढ़ रुपए, कि बीस आने की एक सड़ियल टाई खरीदी। पहली बार। बाँधना फिर भी नहीं आता था। एक लड़के से बँधवाकर गले में अटका ली।

सो, इस तरह जवानी कटी लेकिन बच्चों का शुरू से खयाल रखा कि किसी तरह का कष्ट न होने पाए उन्हें। साहबजादे की तो हर जिद पूरी की। दो-ढाई साल के रहे होंगे तब से सूट पहन रहे हैं। बाटा के जूते, टाई और हैट। एक बार, मुश्किल से चार पाँच साल के रहे होंगे, एक दुकान पर जिद पकड़ ली कि फौजी सूट पहनेंगे जिसमें सीटी और कंधे पर सितारे लगे होते हैं। बेल्ट और नकली पिस्तौल होती है। सौ कि डेढ़ सौ का था। दिया खरीद कर। तीसरे दिन ही खोंच लगा लाए। पत्नी डाँटने-डपटने लगी। मैंने कहा, 'जाने दो, बच्चा ही तो है। क्या समझेगा अभी।'

शुरू से अंग्रेजी स्कूल में भर्ती कराया। घर पर मास्टर लगाया सो अलग। क्या मजाल खाने-पीने में कोई कोताही रही हो। घी, दूध, मक्खन, अंडा, जैम, जेली, सब, कि भइया इससे ब्रेड खा लो, बेटे उससे खा लो। बेटे ने कहा, गाना गाकर खिलाओ तो गाना गा के खिलाया। बेटे ने कहा कि मुर्गा बनकर खिलाओ तो मुर्गा बन के खिलाया। जैसे बेटा खाए, जैसे खुश रहे। के.जी. में भर्ती कराया, तभी से सवारी। पहले रिक्शा, फिर स्कूल की बस, उसके बाद साइकिल। मुश्किल से दो-चार साल चली होगी कि स्कूटर की डिमांड आ गई। नवें कि दसवें में पढ़ रहे थे उस वक्त। बहुत समझाया कि एक-दो साल साइकिल और चला लो। तब ले देंगे मगर नहीं, साइकिल नहीं चलाएँगे, स्कूटर चलाएँगे, वह भी बजाज। चलाओ भाई, काहे को कोई साध रह जाए। दी लाकर। तीन हजार कि कितना ब्लैक भरा। मुश्किल से दो साल चलाया होगा कि बोले, मोटर

साइकिल लेंगे। 'क्यों भाई, स्कूटर में क्या हो गया?' 'कुछ नहीं, मुझे नहीं पसंद।' तबीयत तो आई, कि एक कंटाप दें खींचकर, लेकिन चुप रह गए। जवान लड़के पर हाथ भी तो नहीं चला सकते। ठीक है। लो, मोटर साइकिल लो।

जेब खर्च तो जब से रुपया पहचानना शुरू किया, तभी से ले जाने लगे। शुरू में तीसरे-चौथे दर्जे तक चवन्नी-अठन्नी, तब रुपया। और आठवें कि नवें से तो जो चाहा, माँ से झटक लिया। कभी पाँच, तो कभी दस। बी.ए. में तो बाकायदा बैंक एकाउंट खुलवा दिया कि साहबजादे बड़े हो गए हैं, हिसाब-किताब रखना, रुपया निकालना, जमा करना, सब सीख लें। कपड़ों का यह हाल कि आठवें दर्जे तक तो स्कूल की ड्रेस चली। दो-दो जोड़ी जूते। एक रेगुलर, काले, रोज के लिए। दूसरे सफेद, पीटी शू। उसके बाद तो फिर नवें में पहुँचे हैं कि आज जींस चाहिए, कल जैकेट चाहिए, परसों जूते खरीदने हैं। वह भी मामूला नहीं, बाटा कि लिबर्टी के। यह भी नहीं कि एक जोड़ी। दो-दो, तीन-तीन। गरज यह कि हर तरह के नखरे उठाए कि साहबजादे को किसी तरह की कमी का एहसास न हो।

अब तो खैर अपनी मर्जी के मालिक हैं। नौकरी करते हैं। शादी होनी थी, सो मैंने कर दी। भगवान की दया से एक बच्चा भी है, लेकिन चाल-ढाल अभी भी वही हैं। कभी मर्जी आई तो हजार-बारह सौ रुपए घर में दे दिए। नहीं तो उनकी बला से। उनको तो दो वक्त का खाना चाहिए, बस। घर क्या हुआ, होटल ठहरा। नौ बजे से पहले कभी सोकर नहीं उठे। उठते ही बेड टी और अखबार। उसके बाद साहब बाथरूम में। कंघा, शीशा, क्रीम, पाउडर, सब अंदर निबटाकर निकलेंगे। निकलते ही, 'कपड़े कहाँ हैं?' 'जूते किधर हैं।' और साहब तैयार। लाइए, खाना दीजिए। घोड़ा तक रातिब खाता है तो आराम से जुगाली करके खाता है। लेकिन यहाँ? एक निगाह थाली पर, दूसरी घड़ी पर। जो ठूँसते बना, पेट में ठूँसा और जूता चरमराते बाहर गैलरी में। मोटर साइकिल की गद्दी के नीचे से कपड़ा निकालकर एक हाथ इधर मारा, एक उधर और उसके बाद साहब घोड़े पर सवार, 'भट', 'भट' और साहब एक, दो, तीन। अब रात में लौटेंगे, दस कि ग्यारह बजे।

कितनी बार कहा कि भाई दफ्तर से एक बार घर आ जाया करो। फिर भले चले जाओ। आजकल का जमाना देखो। खुलेआम, दिनदहाड़े लूटमार के केस होते रहते हैं।

एक्सीडेंट का यह हाल है कि कोई दिन ऐसा नहीं होता कि दो-चार मौतें न होती हों। दिमाग में तरह-तरह के डर बने रहते हैं। और फिर, मेरी बात एक बार छोड़ भी दो। कम से कम अपनी बीवी और बच्चे का खयाल तो करो। ढाई साल का है और बाप की शक्ल देखने को तरसता रहता है। जब पूछो, 'पापा कहाँ हैं?' कहेगा, 'ऑफिस गए हैं।' ऑफिस न हो गया साला जेल हो गया कि बिना जमानत पर छूटे बेचारे आएँ कैसे।

मेरी तो सारी उम्र किराये के मकान में कट गई। बीवी-बच्चों को मेरे बाद परेशानी न उठानी पड़े, इसलिए रिटायर होने से पहले जिंदगी भर की जमा-पूंजी लगाकर मकान बनाया। दिन-दिन भर ऊँट की तरह गरदन उठाए धूप में खड़े हैं। चेहरा काला पड़ गया था। बालू, मौरंग, गिट्टी, ईंटा, चूना, लोहा, लकड़ी, कभी कुछ तो कभी कुछ। चले जा रहे हैं भागे। क्या भूख और क्या प्यास। शरीर आधा रह गया था। क्या मजाल कि साहब कहीं चले जाएँ। क्रीज न बिगड़ जाएगी पतलून की। कभी मैंने कहा भी तो पढ़ाई का बहाना कर दिया। ठीक है भाई, मैं हूँ न भाग-दौड़ करने के लिए। तुमको क्या जरूरत। तुमको अलग कमरा चाहिए रहने के लिए? लो अलग कमरा। मकान बना ही इसीलिए है। तुम्हीं लोगों का है। लेकिन भाई, मकान भी देखरेख माँगता है। अब दस साल बने हो गए। और फिर आजकल सब सामान तो साला दो नंबर का मिलता है। सीमेंट तक दो नंबर की। मौरंग में मिट्टी। बालू में कचरा। सो भाई टूट-फूट तो लगेगी ही। अब यह जीने के नीचे जो प्लास्टर निकल रहा है, अभी एक महीने तक बित्ता भर उखड़ा था। अब एक हाथ हो गया। अब मुझसे तो बुढ़ापे में होता नहीं। कितनी बार कहा कि किसी दिन चले जाओ, बाजार से एक राज और मजूर पकड़ लाओ। बोरी, दो बोरी सीमेंट, बालू, जो लगे, वह ले आओ। जहाँ-जहाँ टूट-फूट है, ठीक करा लो। लेकिन नहीं। साहब बहादुर ने इस कान से सुना और उस कान से बाहर।

चलो भाई, माना इसमें कुछ मेहनत पड़ेगी कि एक आध दिन का वक्त लगेगा। फाटक में ताला मारने में कौन मेहनत लगती है? लेकिन नहीं। यह भी साहब बहादुर की शान के खिलाफ है। आएँगे तो बाहर से ही 'पीं-पीं' करेंगे। कोई जाकर फाटक खोले तो साहब बहादुर 'फट-फट' करते मोटर साइकिल पर बैठे-बैठे अंदर घुसें। गैलरी से सीधे पोर्टिको में जाकर रुकेंगे। जिसकी गरज हो, वह फाटक बंद करे। दो-एक बार तो रात भर खुला पड़ा रहा। गनीमत है कि कोई कुछ उठा नहीं ले गया। और फाटक तो फाटक,

एक बार तो कमरे का दरवाजा तक रात भर खुला पड़ा रहा। मैं सुबह चिड़ियों को दाना देने उठा तो देखता क्या हूँ कि कबूतर के डैनों की तरह दोनों पल्ले खुले पड़े हैं। मैं तो समझा कि आज लंबी चोरी हो गई। लेकिन ऊपर वाले की मेहरबानी कि कुछ गया नहीं।

पानी की मोटर तो कितनी बार रात-रात भर चलती रही। पूरे आँगन में पानी ही पानी हो गया। यही हाल पंखा-बिजली का है। चल रहा है पंखा तो चल रहा है। जल रही है बत्ती तो जल रही है। कोई वहाँ बैठा है या नहीं, इससे क्या मतलब। कूलर तो गर्मियों में चौबीसों घंटा चलता है। एक बार तो यहाँ तक हुआ कि साहब बहादुर बीवी-बच्चे समेत सिनेमा गए। कूलर चलता छोड़ गए। बाहर से कमरे में ताला। सो यह भी नहीं कि कोई और बंद कर दे। 'क्यों भाई, यह कूलर क्यों चलता छोड़ गए थे?' मैंने पूछा, तो बोले, 'बंद कमरा गरम हो जाता है। फिर कौन घंटा भर इंतजार करे कि ठंडा हो।' ठीक है भाई। जो तुम कहो, सो ठीक। कौन बहस करे तुमसे। मैं तो यह जानता हूँ कि आधी जिंदगी बिना कूलर के काटी है। बिजली ही नहीं थी घर में तो कूलर कहाँ से होता? और अब भी इस कूलर-फूलर से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है।

मजे से खरहरी चारपाई पर पानी छिड़क कर सोता हूँ। बस, कलक यह होती है कि बिला-वजह बिजली का तिगुना-चौगुना बिल भरा जाता है। वह भी टाइम से आता कहाँ है। अब पिछली बार क्या हुआ? पूरे साल का बिल, बारह हजार का, बनाकर भेज दिया। मैंने कहा कि ठीक करा लो नहीं तो बत्ती कट जाएगी। बोले, 'इसमें 'एन.आर.' लिखा है यानी रीडिंग के बिना ही बिल आ गया है। इसलिए बिजली नहीं कटेगी। एक आदमी से कह दिया है। अगली बार ठीक होकर आ जाएगा'। लेकिन अगली बार आया सत्रह हजार का। मैंने सोचा, इस तरह तो घर की कुड़की ही हो जाएगी। गया इस बुढ़ापे में बिजली कंपनी। घंटों लाइन में खड़ा रहा। धक्के खाए। इस बाबू के पास नहीं उस बाबू के पास जाइए। जे.ई. साहब से मिलिए। जे.ई. साहब हैं कि गूलर का फूल हो गए। सुबह गए तो शाम को आइए। शाम को गए तो कल आइए। किस्सा कोताह दस-पंद्रह दिन की भाग-दौड़ के बाद साढ़े नौ हजार का बिल बना। वह तो दस हजार का एक फिक्स्ड पड़ा था। उसे तुड़वा कर भरा, नहीं तो बिजली ही कट जाती।

बिजली तो बिजली, नल तक खुला पड़ा रहता है। बेसिन में हाथ धोया और नल खुला छोड़ दिया। बह रहा है साहब। जब तक टंकी खाली नहीं हो जाती, बहेगा। किचेन का नल तो एक महीने से बह रहा है। टोंटी की चूड़ियाँ मर गई हैं। सो, इस्तेमाल के बाद उसमें कपड़ा बाँध दिया जाता है। अब लाख कपड़ा बाँधो। पानी की धार भला रुकेगी उससे? यह नहीं होता कि एक नई टोंटी खरीद लाएँ और रिंच ले के बदल दें। बेंत की कुर्सियों में कीलें निकल आई हैं। जो बैठता है उसी के कपड़े फट जाते हैं। सो कपड़े फटना मंजूर, यह नहीं होगा कि प्लास लेकर सारी कीलें निकाल कर फेंक दें। उसकी जगह तार से कसकर बाँध दें।

छेनी, हथौड़ी, रिंच, प्लास, पेंचकस, सब लाकर मैंने रखे थे। लेकिन सब पता नहीं कहाँ चले गए। वक्त पर कोई चीज माँगो तो मिलेगी ही नहीं। आखिर ढूँढ़-ढाँढ़ कर सब औजार बक्से में बंद करके रखे, तब बचे। कम से कम डेढ़ दर्जन ताले रहे होंगे घर में, लेकिन एक फाटक का ताला छोड़कर, वह भी इसलिए कि रोज बंद होता है और ताले पता नहीं कहाँ गुम हो गए। दो-चार तो मुझे कबाड़ में पड़े मिले। मैंने पूछा, 'कुंजी कहाँ है इनकी? तो जवाब मिला, 'यह तो ऐसे ही कितने दिनों से बिना कुंजी के पड़े हैं।' बहुत हल्ला किया मैंने, लेकिन कुंजी ढूँढ़े नहीं मिली। आखिर ताले वाले के पास ले जाकर नई कुंजियाँ बनवाईं मैंने। मुश्किल से पाँच रुपयों में सब ताले ठीक हो गए। नया ताला लेने जाओ तो तीस रुपयों से कम में न आएगा, मगर यहाँ एक बार कह दिया गया, ताले खराब हो गए तो हो गए। फेंको सबको। जरूरत पड़ेगी तो फिर नए आ जाएँगे।

पैसा बरबाद हो तो हो। ताले तो ताले, सिलाई मशीन पड़ी जंग खा रही है। दस-पंद्रह साल से ज्यादा नहीं हुए होंगे खरीदे। किस्तों पर ली थी मैंने गुड़िया के सीखने के लिए। उसकी शादी हुई तो मैंने कहा, 'दे दो उसको। ले जाए अपने साथ, लेकिन सब ने मना कर दिया, 'काहे को दे दो? इतना दहेज तो दिया है। मशीन की बात तय थी क्या पहले से, जो दे दें? घर में रहेगी तो काम आएगी।' सो यह काम आ रही है। पच्चीस बार मैंने कहा, 'ले जाकर दुकान पर दे दो, ठीक हो जाएगी।' लेकिन किसे फुरसत है। जरा-सा लिहाफ का खोल सिलवाना है, खिड़की-दरवाजे के परदे बनने हैं, सोफे के कि तकिये के खोल सिले जाने हैं, चला जा रहा है सब दरजी के यहाँ। दुगने-तिगुने दाम वसूल रहा है वह। लेकिन यहाँ किसको कलक है। यह तो बरतने-व्योपरने वाली चीजों का हाल है।

अब सुनिए खाने-पीने की चीजों के बारे में। महीने भर के राशन की लिस्ट बनिए के यहाँ चली जाती है। वह, जैसा उसकी समझ में आता है, घर पर दे जाता है। तौल में तो पूरा होता ही नहीं होगा। क्वालिटी भी जो उसके पास है, वही मिलेगी। चावल पुराने की जगह नया दे जाएगा। दस मर्तबा टोको कि भाई इसे वापस भिजवा कर बदलवा लो, तब कहीं बदलेगा, लेकिन इस बीच आधे से ज्यादा इस्तेमाल हो चुका होगा। मंजन मँगाओ कॉलगेट, दे जाएगा कोई लोकल मेड। साथ में प्लास्टिक का एक सड़ियल मग पकड़ा जाएगा कि इसके साथ यह फ्री गिफ्ट भी है। अब एक तो गिफ्ट किसी मसरफ का नहीं और मसरफ का हो भी तो क्या गिफ्ट के लिए सामान घटिया ले लिया जाएगा?

मेरे हाथों जब तक राशन आया, बाजार कि मिल का आटा कभी नहीं आया। देख-पसंद करके बढ़िया गेहूँ 'के अरसठ' कि किसी और अच्छी क्वालिटी का लाता था मैं। माँ के जमाने में तो खैर गेहूँ बाकायदा धोया जाता था, लेकिन बीनने-पछोरने का काम उसके बाद तक चला है। इंटर में पढ़ता था, तब तक कंधे पर बोरी रखकर पिसाने ले जाता था। उसके बाद साइकिल पर। पिता की सख्त ताकीद रहती थी कि गेहूँ आँख के सामने पिसे। सो, खड़ा रहता था मैं चक्की के पास। लेकिन जब से साहबजादे राशन लाने लगे हैं, तब से गेहूँ देखने को आँखें तरस गईं। पिसा आटा आता है, बोरी में बंद। पता नहीं साला कितने दिनों पुराना हो। पीसने से पहले मशीनों से सब सत खींच लिया जाता है गेहूँ का। तभी तो चमड़े जैसी रोटी बनती है। लेकिन भाई, कौन कहे? एक बार कहा तो बोले, 'आप खाली ही तो बैठे रहते हैं। रिक्शे पर लदवाकर ले आया कीजिए गेहूँ। माँ साफ कर दिया करेंगी। पिसा लाया कीजिएगा।' मैं चुप रह गया।

सब्जी का यह हाल है कि जो दरवाजे पर बिकने आ गई, ले ली गई। सड़ी हो या गली। दाम ज्यादा सो अलग। लेकिन साहब बहादुर इतनी तकलीफ गवारा नहीं कर सकते कि बाजार से जाकर ले आएँ। अरे भाई, कौन रोज-रोज जाना है। घर में फ्रिज है ही। चलता भी बारहों महीने है। सो एक बार जाकर तीन-चार दिनों के लिए लाकर रख दो। ताजा सब्जी, दाल और गरम-गरम फुल्के, घर के पिसे आटे के, उनकी बात ही और होती है। लेकिन नहीं साहब, किसी को फुरसत हो तब तो। बला से किसी के पेट में दर्द हो, अपच हो कि अफरन, पेचिश हो कि डायरिया, खाने-पीने का जो ढंग है, वही रहेगा।

बीमार जिसको पड़ना हो पड़े। इलाज कराए, भुगते। एक यह मरा टीवी क्या आ गया है, जिसको देखो वही उससे चिपका है। दाल चूल्हे पर चढ़ी है। कुकर की सीटी की आवाज कान में पड़ गई तो उठकर गैस धीमी कर दी, नहीं तो दाल जल रही है तो जले। दूध उबल रहा है तो उबले।

घर की सफाई का आलम यह है कि पूरे घर में मकड़ी के जाले लगे हैं। छिपकलियाँ अंडे, बच्चे दे रही हैं। जहाँ देखो, काकरोच टहल रहे हैं। झींगुर फुदक रहे हैं। मक्खी-मच्छर तो खैर घर का हिस्सा बन ही गए हैं। महरी आती है, फर्श पर झाड़ू लगाकर चली जाती है। गंदे-संदे पानी से पोंछा मार देती है, लेकिन भाई फर्श ही तो घर नहीं है। दीवारें और छतें भी तो हैं। वे भी सफाई माँगती हैं। न सही रोज, हफ्ते में एक दिन सही। बाँस में ब्रुश बाँधकर सारे घर के जाले साफ कर डालो। फिनाइल डालकर सारा घर धो-पोंछ डालो। वह क्या होता है डी.डी.टी. कि फिनिट छिड़क दो। घर-घर की तरह लगने लगे।

अभी उस दिन टीवी पर दिखा रहा था, धूल में बड़े-बड़े कीड़े होते हैं। 'डस्ट माइट' कि क्या नाम बता रहा था। नंगी आँखों से दिखाई नहीं देते। दूरबीन से देखो तो दिखेंगे। मजे से सोफे की गद्दी के कवर को कुतर-कुतर कर खा रहा था। मुझे तो बड़ा ताज्जुब हुआ देख के। इसीलिए पहले तीज-त्योहार, होली-दीवाली पर पूरे घर की लिपाई-पुताई होती थी। लेकिन अब तो त्योहार के माने और गंदगी जमा होगी घर में। होली हुई तो फर्श और दीवारें सब रंग में पुती पड़ी हैं। दीवाली हुई तो जगह-जगह दीवारों पर मोम चिपका है। दो-चार किलो पटाखों का कचरा फैला पड़ा है। महीनों गंदगी जमा है।

अब देखो, बाथरूम के फ्लश की टंकी तीन महीने से चू रही है। जितनी देर सीट पर बैठो बगल में पानी टपका करता है। दस मर्तबा टोक चुका हूँ कि किसी प्लंबर को बुलाकर दिखा दो। न हो तो नई टंकी लगवा लो। सीट पर बैठो तो सिर पर पानी टपकता ही है, दीवार में पानी भरता है सो अलग। लेकिन किसे फुरसत है?

ठीक है भाई, जो हो रहा है होने दो। कौन मुझे अपने साथ ले जाना है। बरस दो बरस की जिंदगी और रह गई है। किसी न किसी तरह कट ही जाएगी।

दो : बयान पुत्र

पापा शर्तिया सठिया गए हैं। रिटायर होने के छह-आठ महीने बाद तक तो ठीक रहे। उसके बाद पता नहीं क्या हो गया है, दिन भर, रात भर बड़बड़ाते रहते हैं। जरा-जरा-सी बात पर गुस्सा करने लगते हैं। कभी किसी पर बिगड़ रहे हैं तो कभी किसी पर। सबसे ज्यादा नाराज तो मुझसे रहते हैं। शायद ही मेरी कोई बात उन्हें पसंद हो, जबकि आज तक मैंने कभी उनकी किसी भी बात पर, चाहे कितनी ही बुरी लगे मुझे, पलटकर जवाब नहीं दिया। सबसे बड़ी नाराजगी तो उनकी इस बात से है कि मैं दफ्तर से सीधे घर क्यों नहीं आता। कहते हैं चिंता होने लगती है। सड़कों पर लूटमार और कत्ल होते रहते हैं, एक्सीडेंट होते रहते हैं। अब उन्हें कौन समझाए कि जल्दी आने से क्या बच जाऊँगा मैं? एक्सीडेंट होना होगा तो हो के रहेगा, बल्कि देर से आने में तो फिर भी एक्सीडेंट की संभावना कम हो जाती है। उस समय सड़कों पर ट्रेफिक का इतना रश नहीं रहता, जितना ऑफिस छूटने के समय होता है। रही लूटमार की बात, सो दिन-दहाड़े होती है। रात में तो फिर लूटने वाला सोचेगा कि इस वक्त सन्नाटे में इतनी बेफिक्री से चला जा रहा है, इसके पास क्या होगा, जाने दो।

वैसे भी, आप बताइए, दफ्तर से सीधे घर आकर क्या करूँ? इनकी झाड़ सुनूँ? आटा पिसाऊँ? सब्जी लाऊँ? इसी में सारी जिंदगी बिता दूँ? दुनिया भर मिल का पिसा हुआ आटा खाती है। आइ.एस.आइ. ब्रांड। बोरी में सीलबंद होकर आता है, लेकिन इनसे कौन झक लड़ाए। कहते हैं यह आटा नुकसान करता है। मिलों में पीसने से पहले गेहूँ का सारा सत निकाल लिया जाता है। इसकी रोटी और चमड़े की रोटी में कोई फर्क नहीं होता। आँतों में चिपक जाती है। कई-कई दिन तक चिपकी रहती है। सारी दुनिया खा रही है। उसकी आँतों में नहीं चिपकती। इनकी आँतों में चिपक जाती हैं। सब्जी दरवाजे ली जाती है, उस पर भी नाराज। कहते हैं ठेले पर बासी सब्जी मिलती है। अब बताइए भला ऐसा होने लगे कि चार-चार दिन तक वही सब्जी बेची जाए तो बेचारे सब्जी वाले कर चुके धंधा। हाँ, यह मानता हूँ कि पिछली शाम की या सुबह की सब्जी हो सकती है। सो, सारी दुनिया खाती है। मैंने तो नहीं देखा कि खेत पर खड़े होकर कोई अपने सामने सब्जी तुड़वाकर लाता हो।

लेकिन नहीं, जिद है कि वक्त से घर लौटो। अब मैं कुछ कह दूँ तो बुरा मान जाएँगे। खुद घंटो-घंटों, बारह-बारह बजे रात तक शर्मा अंकल के दरवाजे बैठे शतरंज खेला करते थे, सो भूल गए। तीन-तीन चार-चार बार बुलाने जाता था मैं, तब उठते थे। बिगड़ने लगते थे, सो अलग। यही नहीं, माँ बताती हैं कि एक जमाने में तो रात-रात भर गायब रहते थे। कोई भाटिया साहब थे। उनके घर पर पपलू कि फ्लैश खेला करते थे। दो-एक बार तो पूरी तनख्वाह हार आए। कितनी बार तो पीकर लौटते थे। बिस्तर पर उल्टी कर देते थे, लेकिन अपना वक्त किसको याद रहता है? अब क्या-क्या बताऊँ? माँ तो यहाँ तक बताती हैं कि बरेली ट्रांसफर पर गए थे तो वहाँ बगल में कोई कपूर रहते थे। एल.आइ.सी. में एजेंट थे। उनकी पत्नी पर फिदा थे। जब देखो, तब उनके यहाँ बैठे रहते थे। भाभी जी यह, भाभी जी वह। भाभी जी आपके हाथ की बनी चाय के क्या कहने! आपके हाथ की तली पकौड़ियाँ, वाह!

सौ बार अपना हवाला दे चुके हैं कि बचपन में या लड़कपन में पैदल पढ़ने जाया करते थे। कभी कोई जेबखर्च नहीं मिला। बी.ए., एम.ए. तक सूट-टाई नहीं पहनी। जैम-जेली का नाम तक नहीं सुना था। माँ, यानी मेरी दादी बासी रोटी में नमक लगाकर दे देती थीं, वही खाकर पढ़ने चला जाता था। तो भाई, आप यह ताना किसे मार रहे हैं? इसमें मेरा कोई कसूर है क्या? सही बात तो यह है कि वह जमाना ही और था। उस समय जैम-जेली होती ही नहीं थी तो आप खाते क्या? जींस कि जैकेट का चलन ही नहीं था, सो पहनते कैसे? यही गनीमत थी कि घर से खा-पीकर जाते थे। न सही ऊनी पतलून, सूती तो पहनते ही थे। और पहले पैदा हुए होते तो गुरुकुल में पढ़े होते। लंबी-सी चुटिया रखे, लँगोटी लगाए, हाथ में डंडा कमंडल लिए घर-घर भीख माँगकर आटा लाते, तब दो रोटियाँ मिलतीं।

सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि मकान बनवा दिया। सौ बार वह यह बात कह चुके हैं। मेरा खयाल है, शाहजहाँ ने ताजमहल बनवाने के बाद भी इतनी बार यह बात न दोहराई होगी। लेकिन भाई, ठीक है। अगर आपको इससे संतोष मिलता है तो जाप कीजिए दिन भर इस बात का। लेकिन उनका महज यह मतलब नहीं है कि मकान बनवा दिया। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि मकान बनवाकर मेरे ऊपर एहसान किया। अब अगर मैं पलटकर कह दूँ कि मैंने कहा था मकान बनवाने के लिए?, तो

बिगड़ उठेंगे। बाबा तो किराये के मकान में रहते थे। वह तो नहीं बनवा गए आपके लिए। आपने बनवाया ठीक किया। आप भी न बनवाते तो मुझे जरूरत पड़ती तो मैं बनवाता। और अगर न बनवाया होता मकान आपने तो क्या सड़क पर रह रहे होते हम लोग? सारी दुनिया क्या अपने बनवाए मकान में ही रहती है?

खैर, अब मकान बन गया तो बन गया। गिर तो जाएगा नहीं। हाँ, दसेक साल हो गए हैं बने तो थोड़ी-बहुत टूट-फूट जरूर लगी रहेगी। सो, हर मकान में होता है। लेकिन नहीं। जरा-सा प्लास्टर कहीं उखड़ा देख लेंगे तो सौ बार टोकेंगे। बिजली की रोशनी से लेकर सूरज की रोशनी तक में पच्चीस बार उसका मुआयना करेंगे। यही नहीं, सारे घर का प्लास्टर ठोक-बजाकर देखेंगे कि कहीं पोला तो नहीं पड़ रहा। जिद पकड़ लेंगे कि मिस्त्री पकड़ कर लाओ, मजदूर पकड़ कर लाओ। फौरन ठीक करोओ। गोया कि दुनिया का सबसे जरूरी काम बालिश्त भर का यह प्लास्टर ठीक कराना ही है। इतनी फुरती तो, मैं समझता हूँ, पुरातत्व विभाग वाले बड़ी से बड़ी ऐतिहासिक इमारतों को ठीक कराने में भी न दिखाते होंगे।

चलिए साहब यह तो प्लास्टर है कि जल्दी ठीक न हुआ तो और गिर जाएगा, और उनके तर्क के अनुसार, आज प्लास्टर गिरा है, कल ईंटें गिरेंगी, परसों पूरी दीवार गिर पड़ेगी। लेकिन मकड़ी का जाला लगने से तो मकान नहीं गिर पड़ेगा। मगर नहीं साहब किसी भी कोने-अंतरे में जाला दिख गया तो पूरा मकान सिर पर उठा लेंगे। अब पत्नी भी क्या करे? सुबह उठते ही खटने लगती है। सबके लिए चाय बनाए, बच्चे की देखभाल करे, खाना पकाए, टिफिन तैयार करे, कपड़े धोए कि बाँस लिए जाला साफ करती फिरे। माँ से तो हो नहीं सकता। वह वैसे ही गठिया से मजबूर हैं।

एक बार घर में एक चुहिया दिख गई। फिर क्या था। जिद पकड़ के बैठ गए कि चूहेदानी खरीद कर लाओ। लाया भाई मैं। लेकिन पंद्रह दिन तक चुहिया पकड़ में नहीं आई। सोलहवें दिन एक चुहिया फँसी। अब समस्या यह है कि इसे छोड़ा कहाँ जाए। नई कॉलोनी है। किसी के दरवाजे छोड़ो तो झगड़ा करने लगे। आखिर मोटर साइकिल पर चूहेदानी रखकर चार किलोमीटर दूर रेलवे लाइन के किनारे ले जाकर छोड़ा। दूसरे ही दिन फिर एक चुहिया दिख गई। पता नहीं वही थी या दूसरी। मुझसे बोले, 'कहाँ

छोड़ा था?' मैंने खीझकर कहा, 'जहाँ छोड़ा था, वहाँ छोड़ा था। अबकी पकड़ में आए तो आप खुद छोड़ आइएगा।'

छिपकलियों के पीछे पड़े रहते हैं। शुरू में तो डंडा मारते फिरते थे। उस चक्कर में दीवार पर लगी तस्वीर गिरा दी। हुसेन की पेंटिंग थी। रेअर। पूरे आठ रुपए बारह आने की लाया था। पच्चीस रुपए मढ़ाई दिए थे। छिपकली तो पता नहीं कहाँ चली गई, पूरा शीशा चकनाचूर हो गया। अब कौन इनको समझाए कि छिपकलियाँ इस देश में हैं तो हैं। ये जाने वाली नहीं हैं। खैर चलिए, मान लिया कि बहुत मेहनत करके छिपकली को एक बार आप भगा भी देंगे। लेकिन झींगुर का क्या करेंगे? वह तो कमबख्त दिखाई भी नहीं देता। किसी दराज कि सूराख में बैठा बोल रहा है। लेकिन उससे भी इनको शिकायत। अब कौन बताए इनको कि अमेरिका के व्हाइट हाउस तक में झींगुर घुस चुका है। वह कौन थीं फर्स्ट लेडी उस वक्त मैडम बुश कि रीगन, रात भर नींद नहीं आई उनको। दूसरे दिन प्रेसीडेंट हाउस का सारा अमला झींगुर ढूँढ़ने में जुटा, तब कहीं तीन-चार घंटे की मुतवातिर मेहनत के बाद पकड़ में आया। सो, इतना प्रबंध तो मैं कर नहीं सकता कि डेढ़-दो सौ आदमी झींगुर पकड़ने में लगा दूँ।

इधर कुछ दिनों से एक नया फिकरा ईजाद किया है कि यह घर नहीं है, कबाड़खाना है। अरे भाई, कौन-सा ऐसा घर है, वह भी हिंदुस्तान में जहाँ दो-चार इधर-उधर की फालतू चीजें न हों। और सबसे बड़ा कबाड़खाना तो खुद खोले हैं। टीन के एक बड़े-से बक्से में पता नहीं क्या-क्या भरे रखे हैं। नट, बोल्ट, कील, पेंच, तार, जाली, पुराने कब्जे, बिना ताले की चाबियाँ और न जाने क्या-क्या। सड़क पर चलते कहीं कोई लोहे का टुकड़ा, छर्रा, गोली, कुछ भी पड़ा दिख गया, उठाकर ले आएँगे और अपने बक्से में बंद कर लेंगे कि कभी काम आएगा। एक और बक्से में हर तरह के औजार रखे हैं। स्क्रू ड्राइवर से लेकर रिंच, प्लास, छेनी, हथौड़ी तक। एक छोटी आरी भी ले आए हैं कहीं से। उसे भी उसी में बंद किए हैं।

एक बार सनकिया गए तो घर भर में खोजबीन कर चार-पाँच पुराने ताले निकाल लाए कहीं से। कहने लगे कि इन तालों की चाभियाँ कहाँ हैं। अब चाभियाँ कहाँ से आएँ? बाबा आदम के जमाने के ताले! पता नहीं कब से खराब पड़े होंगे। लेकिन नहीं, जिद पकड़ गए कि जब ताले घर में आए हैं तो उनकी चाभियाँ भी आई होंगी। कौन कहता

है, नहीं आई होंगी। लेकिन चीजें खोती भी तो हैं। कहीं खो गई होंगी, मगर वह जिद पकड़े रहे। एक तरफ से सबको हलकान कर डाला। पूरे एक सप्ताह तक 'चाभी खोजो अभियान' चला। लेकिन चाभियाँ नहीं मिलनी थीं सो नहीं मिलीं। मगर यह कहाँ हार माननेवाले। बाजार जाकर चाभी वाले से चाभियाँ बनवाकर लाए। तब चैन पड़ी। तब से सारे ताले सहेज कर अपनी अलमारी में रखे हैं। मशीन में तेल डालने वाली कुप्पी पा गए हैं कहीं के। उसमें कड़वा तेल भरे रखे हैं। हर छठे-सातवें दिन सारे तालों में तेल डालकर उन्हें धूप दिखाते हैं। यही नहीं, सारे खिड़की-दरवाजों के कब्जों, सिटकनियों और कंडों में तेल डालते फिरते हैं। जो भी दरवाजा खोलता है, उसके कपड़ों में तेल लग जाता है, मगर किसकी मजाल जो कोई इनसे कुछ कह दे। कहे तो सुने कि सिर पर नहीं उठाकर ले जाऊँगा मैं। मरूँगा तो सब यहीं छोड़ जाऊँगा। तब जो समझ में आए, करना। मुझसे अपनी आँखों बरबादी नहीं देखी जाती। इसीलिए हलकान होता रहता हूँ। सो भाई, किसी ने कहा आपसे हलकान होने को? जब इस बात का एहसास है कि सिर पर उठाकर नहीं ले जाओगे तो क्यों फँसे हो इस माया-मोह में। भगवत भजन में मन लगाओ। सुबह-शाम दो घंटा बैठ के रामायण कि गीता का पाठ करो।

मगर नहीं, रात-रात भर उठकर टहलते हैं। हर खिड़की, दरवाजा ठोंक-बजाकर देखते हैं कि बंद है कि नहीं। कभी कोई दरवाजा खुला रह गया तो दूसरे दिन सुबह-सुबह सारा घर सिर पर उठा लेंगे, 'चोरी हो जाती तो?' अब उनसे कौन बहस करे कि आजकल चोरी-डकैती दरवाजा खुला रह जाने से नहीं होती। आजकल चोर कि डाकू पूरी योजना बनाकर, कॉलबेल बजाकर शान से आते हैं। सीने पर पिस्तौल रखकर सामान ले जाते हैं। अभी एक महीना भी नहीं हुआ, इसी कॉलनी में रात के ग्यारह भी नहीं बजे होंगे, भसीन साहब के यहाँ डकैती पड़ी थी। डाकू पूरी ट्रक साथ लेकर आए थे। रात भर सामान लदता रहा। सुबह चार बजे ट्रक स्टार्ट करके चले गए। भसीन साहब पूरे परिवार सहित घर में थे। सबको रस्सियों से बाँधकर मुँह में कपड़ा ठूँस दिया था। सुबह जब महरी आई, तब चिल्ल-पों मची। लेकिन इनको कौन समझाए। इनका बस चले तो रोशनदान तक में ताला डलवा दें।

इधर पिछले कुछ दिनों से चिड़िया चुगाने की आदत डाल ली है। सुबह उठते ही रसोई में घुस जाएँगे। रोटी वाला डिब्बा खोलकर उससे रोटी निकालकर मीस-मीस कर पूरे

लॉन और गैलरी में फैला देंगे कि चिड़िया आकर खाएँगी। चलिए भाई, खिलाइए रोटी। इसमें किसी को क्या एतराज हो सकता है। लेकिन इसमें भी फजीहत खड़ी होने लगी। रोटी अगर एक से ज्यादा बची तो यह कि इतनी सारी रोटियाँ क्यों बरबाद की जा रही हैं। और अगर एक भी नहीं बची तो यह कि चिड़ियों को खिलाने तक के लिए रोटी नहीं बचती। अब बताइए साहब, इसका कोई इलाज है? इसी को कहते हैं चित भी मेरी, पट भी मेरी। यानी मुझको तो मीन-मेख निकालनी ही है, तुम जो भी करो। आखिर हारकर इनकी झाँय-झाँय बंद करने की गरज से मैंने पत्नी से कहा कि एक रोटी कटोरदान में छोड़कर बाकी किसी बरतन में छिपाकर फ्रिज में रख दिया करो। मगर साहब, इनकी निगाह से कहाँ चीजें बचनेवाली। यह तो सुबह उठते ही जैसे सारे घर की तलाशी लेने लगते हैं। आखिर एक दिन फ्रिज में छिपाकर रखी गई रोटियाँ इन्हें दिख ही गईं। अब यह शिकायत तो पीछे पड़ गई कि इतनी रोटियाँ क्यों बचीं? नई शिकायत यह पैदा हो गई कि मुझसे बात छिपाई जाती है, ताकि में कुछ कहूँ नहीं। करो बरबाद, जितना करना है। पेट काट-काटकर मैंने यह गृहस्थी जोड़ी है। उड़ाओ सब मिलकर। लुटाओ दोनों हाथों से। फूँक डालो सब कुछ।

अजब-अजब आदतें बना ली हैं। कपड़े-लत्ते की कोई कमी नहीं है। लेकिन इसके बावजूद, फटी तहमद पहने नंगे बदन, बाहर बरामदे में बैठे रहते हैं। इसी तरह सौदा लेने चले जाएँगे। कुछ कहो तो कहेंगे गाँधीजी भी तो लंगोटी पहनते थे, उन पर किसी ने उँगली नहीं उठाई, वही पहने-पहने विलायत गए थे। वहाँ के राजा के साथ बैठकर खाना खाया था। अब कीजिए बहस! कर सकते हैं?

गरमी भर दो-दो कूलर चलते हैं। लेकिन अंदर नहीं सोएँगे। बाहर खुले में लेटेंगे। वह भी बान की चारपाई पर! तीन-तीन फोल्डिंग हैं घर में। लेकिन उस पर नहीं लेटेंगे। बान की चारपाई पर ही लेटेंगे, वह भी बिना कुछ बिछाए। पानी में भिगोकर, नंगे बदन पड़े रहेंगे। कोई देखे तो यही कहेगा कि घर का नौकर होगा, तभी तो बेचारा बिना बिस्तर के पड़ा है।

एक और खब्त सवार रहती है। बिजली बेकार न हो। न हो भाई। इससे कौन असहमत हो सकता है। यह तो सरकार भी कहती है। रेडियो-दूरदर्शन पर विज्ञापन आते हैं, लेकिन अब ऐसा भी नहीं हो सकता कि आदमी बेडरूम से टॉयलेट जाए तो बत्ती-पंखा

बंद करके जाए, कि घंटी बजने पर बाहर निकल कर देखने जाए तो कमरे की बत्ती गुल करके जाए। लेकिन इनका यही मतलब है कि एक सेकंड भी बत्ती बेकार न जले। किचन में दाल चढ़ाकर पकाने वाला कि पकाने वाली बाहर कमरे में सब्जी काटने बैठे तो वहाँ की बत्ती गुल कर दे। फिर चाहे वहाँ बिल्ली टहले या छछूंदर। बाथरूम की बत्ती खुली देखेंगे तो दरवाजा खोलकर झाँकने लगेंगे कि कोई अंदर है या ऐसे ही बत्ती जल रही है। जहाँ भी कोई बत्ती जलती देखी और किसी को वहाँ नहीं पाया, फौरन बत्ती ऑफ कर देंगे। पंखा चलता देख लिया कहीं और किसी को आसपास नहीं पाया, फौरन बंद कर देंगे। एक बार पानी की मोटर खुली रह गई। अब पता नहीं किसने खोली थी। बहरहाल, रह गई तो रह गई। मगर नहीं साहब, क्यों रह गई? हफ्तों इन्क्वायरी करते रहे। बस चलता तो जाँच कमीशन बिठा देते।

बैठे-बैठे बेमतलब की चीजों से उलझते रहते हैं। उस दिन खामख्वाह का बखेड़ा खड़ा कर दिया। बाथरूम के फ्लश की टंकी कुछ दिनों से लीक कर रही थी। कास्ट आयरन की पुराने जमाने की टंकी, कहीं हो गई होगी क्रैक। ऐसा नहीं कि मैंने नहीं देखा। आखिर मैं भी इसी घर में रहता हूँ, लेकिन अलादीन का चिराग तो किसी के पास है नहीं कि घिसा नहीं कि जिन्न हाजिर, 'बोलिए मेरे आका, क्या हुक्म है?' 'टंकी ठीक करनी है भाई।' 'लीजिए, हो गई।' प्लंबर को पकड़कर लाना पड़ेगा। वह देखेगा तब बताएगा कि क्या गड़बड़ी है। इसी में मरम्मत हो जाएगी कि बदलनी पड़ेगी। सो दो बार मैं जा चुका था, लेकिन यह प्लंबर आप जानते हैं, छोटे-मोटे कामों के लिए तो आसानी से राजी होते नहीं। सौ बार दाढ़ी में हाथ लगाओ, तब कहीं सत्तर नखरे करके आएँगे। वैसे, ऐसी कोई आफत भी नहीं थी। टायलेट इस्तेमाल करने से पहले फ्लश कर दो या फिर टंकी का नल नीचे से बंद कर दो। और इस सबकी भी क्या जरूरत है। दूसरा टायलेट भी तो है घर में। उसको इस्तेमाल करो तब तक। मगर नहीं। हो गई खब्त सवार इनको कि टंकी ठीक होनी ही है। सो, इस बीच किसी दिन टीवी पर एम.सील का कोई विज्ञापन देख लिया। बस, फिर क्या था। बाँधी तहमद और बाजार जाकर खरीद लाए एक पैकेट। घुस गए बाथरूम में स्टूल लेकर। तभी जाने क्या हुआ, स्टूल पर से पैर फिसला कि भगवान जाने क्या हुआ, नीचे आ रहे। तीन दिन से अस्पताल में पड़े हैं। एक्सरे हुआ तो पता चला, कूल्हे की हड्डी टूट गई है। ऑपरेशन करना पड़ेगा। लोहे की रॉड डाली जाएगी तब चलने-फिरने लायक होंगे। कम से कम

पंद्रह हजार का लटका है। ऑफिस की क्रेडिट सोसाइटी और पी.एफ. दोनों से लोन अप्लाई कर दिया है। मिल जाएगा तो ठीक, नहीं तो बीवी के जेवर बेचने पड़ेंगे। बेचूँगा। और रास्ता भी क्या है?

तीन : बयान माँ

आज इनको मरे पूरे छह महीने हो गए। आज ही के दिन, लगभग इसी समय इन्होंने प्राण तजे होंगे। अच्छे-भले स्ट्रेचर पर लिटाकर ऑपरेशन थेटर में ले जाए गए, और लाश बाहर निकाली। डॉक्टरों का कहना था कि हार्ट फेल हो गया। पहले से खराबी थी, इसलिए ऐसा हुआ। अब भगवान जाने हार्ट-फेल हुआ कि कोई कह रहा था बेहोशी की दवा ज्यादा दे दी, जिससे होश ही नहीं आया।

पिंटू तो डॉक्टरों को मारने पर उतारू था। किसी तरह मान ही नहीं रहा था। उसका कहना भी ठीक ही था कि हार्ट पहले से चेक क्यों नहीं कर लिया। हार्ट कमजोर था तो ऑपरेशन के लिए थेटर में ले क्यों गए। पहले हार्ट का इलाज हो जाता। नहीं तो न होता ऑपरेशन। उठ-बैठ न पाते, यही तो होता। जिंदा तो रहते। सबने उसको पकड़ लिया नहीं तो मारे बिना न छोड़ता वह डॉक्टर को। फंड से कि कहाँ-कहाँ से पैसा निकालकर फीस भरी बेचारे ने। पूरे दस हजार गिनाकर रखा लिए, तब ऑपरेशन थेटर में ले गए उन्हें। डॉक्टर क्या, जल्लाद हैं सब।

मुझे तो लाश देखते ही बेहोशी का दौरा पड़ गया था। पता नहीं कितने छींटें पानी के मारे लोगों ने। कोई इंजेक्शन भी दिया गया शायद। तब कहीं जाकर होश आया। देखा, सब लोग पिंटू को पकड़े खड़े समझा रहे हैं कि जिसको जाना था, वह तो चला गया, अब फौजदारी से क्या फायदा। मौत पर किसी का बस आज तक चला है कि आज ही चलेगा। जिसकी मिट्टी जहाँ लिखी होती है, मौत उसको वहीं घसीट ले जाती है। इनकी मिट्टी ऑपरेशन थेटर में ही लिखी थी। कहावत कही गई है, हिल्ले रोजी, बहाने मौत। नहीं तो न वह मरा विज्ञापन देखते टीवी पर और न स्टूल लेकर बाथरूम में टंकी ठीक करने जाते। जहाँ इतने दिनों से बह रही थी, कुछ दिन और बहती रहती। लेकिन मेरे भाग्य में तो रंड़ापा भोगना लिखा था। जिंदा थे तो अकसर कहते रहते थे कि तुमसे पहले ही मर जाऊँगा मैं। मैं कहती, 'मरे तुम्हारे दुश्मन। तुम क्या मुझे राँड़ बनाना

चाहते हो? ऐसे बुरे करम किए होंगे तभी तुम्हारी मिट्टी देखूँगी, नहीं तो औरत की मरजाद इसी में है कि सधवा मरे। माँग में सिंदूर और पाँव में बिछुए पहनकर चिता पर चढ़े। नहीं तो औरत की जिंदगी अकारथ है।' वह कहते, 'यह सब पुराने जमाने की बातें हैं।' आजकल औरतों के मरने से आदमी को ज्यादा कष्ट होता है, आदमी के मरने से औरत को उतना नहीं होता। और फिर तुमको क्या चिंता? तुम्हारा जवान, कमाऊ बेटा है। बहू है, पोता है। तुमको हमारी कमी नहीं खलेगी। तुम मर जाओगी, तो मुझे कौन पूछेगा? पिंटू को ही देख लो। एको बात नहीं मानता है मेरी। इतनी बार कहा, 'वक्त से घर आ जाया करो। घर की जिम्मेदारी समझो। सुनता है भला मेरी?' मैं समझाती, 'तुमको क्या करना। तुम अपनी दो जून की रोटी खाओ। चींटी, चिड़िया चुगाओ। सुबह-शाम बाहर टहलने निकल जाया करो। पोता बड़ा हो रहा है। उसे बिठाकर 'क' 'ख' 'ग' कि 'ए' 'बी' 'सी' 'डी' पढ़ाओ।'

बस, एक ही चिंता उनको खाए जा रही थी कि घर बरबाद हो रहा है। पिंटू उनकी बात पर ध्यान नहीं देता। इस कान से सुनता है, उस कान से निकाल देता है। कितनी साध से उन्होंने मकान बनवाया था। जरा-सा प्लास्टर उखड़ता था तो उनके कलेजे में हूक उठती थी। मैं समझाती रहती कि मकान में टूट-फूट तो लगी ही रहती है। वह कहते, 'टूट-फूट लगी रहती है, वह तो सही है लेकिन टूट-फूट ठीक भी तो होनी चाहिए। पिंटू को नहीं चाहिए कि इस तरफ ध्यान दे? चलो, खुद से न ध्यान दे, मेरे कहने से तो दे। मेरी उमर हो गई। अब इतना काम होता नहीं मुझसे। जल्दी थक जाता हूँ मैं।' मैं कहती, 'नहीं होता तो चुपा के बैठो, जैसा हो रहा है वैसा होने दो। पिंटू अभी जवान है। क्या समझे दुनियादारी? जवानी में कोई किसी चीज की परवाह करता है? तुम करते थे कि तुम्हारा बेटा ही करेगा? उसके खेलने-खाने के दिन है। दोस्तों के बीच बैठकर गपशप लड़ाता होगा, जैसे तुम लड़ाते थे। रात-रात भर ताश-पत्ता खेलते थे कि नहीं? लेकिन उनको यही चिंता खाए जा रही थी कि अभी से पिंटू का यह हाल है तो आगे तो भगवान ही मालिक है।

पता नहीं क्यों, जैसे-जैसे उनकी उमर बढ़ रही थी, वैसे-वैसे मोह-माया भी बढ़ रही थी। स्वभाव भी चिड़चिड़ा होता जा रहा था। कोई कह रहा था कि शक्कर की बीमारी के मारे ऐसा था। उस बीमारी में आदमी को गुस्सा ज्यादा आता है। जो भी हो, ऊपर से तो

कभी कुछ पता चला नहीं कि शक्कर की बीमारी है, नहीं तो इलाज हो जाता। पिंटू को भी अफसोस है कि न शक्कर की बीमारी का पता चला पहले से, न दिल की कमजोरी के बारे में ही किसी डॉक्टर ने कभी कुछ बताया। आखिर छोटी-मोटी बीमारी में डॉक्टर को दिखाने जाते ही थे। उसको बताना चाहिए था कि नहीं? पहले से पता चलता तो जमकर इलाज हो जाता।

मुझको तो लगता है कि महँगाई खा गई उनको। हड्डी टूटना तो बहाना था। नहीं तो पैंसठ-छियासठ की कोई उमर होती है आजकल। रिटायर हुए थे तो कितने खुश थे। दफ्तर की विदाई पार्टी में यारों-दोस्तों ने ढेर सारे प्रेजेंट दिए थे। रिक्शे पर लदे-फँदे घर लौटे तो बोले, 'चलो, हो गई नौकरी। अब कुछ आराम करूँगा जिंदगी में। कितने लोग तो घर तक पहुँचाने आए थे। सभी कह रहे थे कि आजकल किसी को रिटायरमेंट पर इतने प्रेजेंट नहीं मिले, जितने इनको मिले थे। दूसरे ही दिन बाजार जाकर एक किलो बादाम लाए और गांधी आश्रम वाली शहद की शीशी। मुझसे बोले, 'लो, रोज शाम को चार-छह बादाम भिगो दिया करना। सुबह घिसकर शहद के साथ खाऊँगा।' मौसमी फल तो हर वक्त घर में बने रहते। हफ्ते में दो बार खुद जाकर गोश्त लाते। मुझसे कहते, 'खूब गलाकर पकाना। मसाला कम डालना। मसाला नुकसान करता है।' मैं बनाकर देती तो शौक से बैठकर खाते। कहते, 'जवानी तो झींकते बीती। बुढ़ापे में आराम करूँगा अब। भगवान की दुआ से इतनी पेंशन मिल जाती है कि किसी बात की कमी नहीं पड़ेगी।

पिंटू एक बार न भी दे एको पैसा घर में, तो भी राम जी की किरपा से कभी न होगी।' लेकिन कमी होने लगी। धीरे-धीरे चीजों के दाम ड्योढ़े, दूने, तिगुने हो गए। घर का खर्च जो ढाई-तीन हजार में चल जाता था, पाँच हजार भी कम पड़ने लगे उसके लिए। सो, एक-एक कर खर्चे कम किए जाने लगे। पहले बादाम बंद हुए, फिर गोश्त, तब फल। सुबह जहाँ दही-जलेबी, ब्रेड-मक्खन और अंडे का नाश्ता होता था, वहाँ नमकीन-पूरी बनने लगी। बाद में तो नाश्ता करना ही छोड़ दिया उन्होंने। मैंने कहा भी कि पूरी-पराँठा अच्छा न लगता हो तो तुम्हारे लिए अलग से अंडा कि मक्खन मँगा दिया करें। बस, बिगड़ उठे। बोले, 'बच्चा हूँ क्या मैं? और तुम क्या समझती हो कि इस मारे नाश्ता नहीं करता मैं। इस बूढ़े शरीर को अब और चाहिए क्या? कुछ भी

खा लूँ मैं, इस शरीर में अब कुछ लगने वाला नहीं, बल्कि नुकसान ही करेगा। इसीलिए कहते हैं कि बुढ़ापे में जितना कम खाए, उतना ही ठीक।' कपड़ों के बारे में भी मैंने कहा कि न हो तो खद्दर भंडार से ही दो-चार कुर्ते-पाजामे ले आओ अपने लिए। अच्छा लगता है कि तहमद पहने बाहर बैठे रहते हो? अब इतना टोटा भी नहीं है पैसों का कि नंगे-उधारे बैठे रहो। मेरी बात सुनकर एक क्षण चुप रहे। तब बोले, 'अब इस तन को और क्या चाहिए? कफन चाहिए, सो कोई न कोई डाल ही देगा।' 'क्यों ऐसी अशुभ बात मुँह से निकलते हो?' मैंने कहा तो बोले, 'मैं अब और ज्यादा जिऊँगा नहीं। ज्यादा से ज्यादा चार-छह महीने या एक साल!'

सो, वह तो चले गए, मगर इधर पिंटू को पता नहीं क्या होता जा रहा है। उनके मरते ही जैसे उसके चेहरे की रौनक ही खत्म हो गई हो। जब देखो, तब गुमसुम बन बैठा रहता है। दफ्तर से सीधे घर आ जाएगा। कमरे में कुर्सी पर बैठा अखबार कि कोई किताब लिए पढ़ता रहेगा। कितनी बार मैंने कहा कि शाम को घूम-फिर आया करो कहीं, दोस्तों के यहाँ चले जाया करो, लेकिन क्या मजाल कि दफ्तर के अलावा कहीं चला जाए। हाँ, दूसरे-तीसरे दिन थैला लटकाकर सब्जी लेने जरूर चला जाता है। या फिर सुबह-सुबह दूध लेने चला जाता है। पहले घोसी घर पर दे जाता था। उसे मना कर दिया। कहने लगा, इसमें पानी मिला होता है। बात सही भी थी। अब दूध दूध लगता है। एक अंगुल मोटी मलाई पड़ती है। नहीं तो पहले मलाई के नाम पर झाग भले निकाल लो चम्मच, दो चम्मच, मलाई आँख आँजने भर को भी नहीं निकलती थी। मिल का पिसा आटा लेना भी बंद कर दिया है। महीने, दो महीने पर बाजार से गेहूँ ले आता है। मैं बीन-पछोर देती हूँ। पहली बार उसने देखा तो बहू पर बिगड़ने लगा कि चौधराइन बनी बैठी हो और मम्मी गेहूँ बना रही हैं। बहू तुरंत भाग कर आई, लेकिन मैंने ही मना कर दिया कि इसी बहाने थोड़ा हाथ-पाँव चला लिया करूँगी, नहीं तो गठिया ने तो पकड़ ही रखा है।

पिछले कुछ दिनों से एक और बात देख रही हूँ। रात में सोने से पहले नलों की टोटियाँ देखता है कि बंद हैं कि नहीं। बाथरूम की वह मरी टंकी तो बदल ही गई है। रसोई के नल में भी नई टोंटी लगा दी है। कहीं कोई फालतू बत्ती जल रही होगी कि पंखा चल रहा होगा तो बहू पर बिगड़ने लगेगा कि पैसा क्या पेड़ में लगता है, जो यह बेकार की

बिजली फूँकी जा रही है। सब उन्हीं के लक्षण आते जा रहे हैं। अभी कल कि परसों की बात है, रात में कुछ खटपट हुई तो मेरी आँख खुल गई। देखती क्या हूँ कि दरवाजों के कुंडे-सिटकनी टटोल रहा है कि ठीक से बंद हैं कि नहीं। मैंने देखा तो मेरा मन अंदर से काँप उठा। वह तो बुढ़ापे में यह सब करते थे। इसको क्या होता जा रहा है?

हे भगवान**!** दया करना।